THE TIMES OF INDIA

Date:05-12-23

India's Casteaways

Govts need to see citizens through the prism of their class/gender identity. It makes for better policy

ET Editorials

After Congress came a cropper in three states for which it had promised a caste census, Modi said that he sees only four big 'castes' in the country – women, youth, farmers and the poor. Looking at citizens through the prism of such identities is what political parties and governments should do. Because the caste prism only entrenches antiquated and unjustifiable social hierarchies. It is also extremely inefficient at delivering prosperity to those with low incomes. But currently, neither politics nor policy does enough for those disadvantaged by gender/class.

Nari shakti has two faces | Anybody going only by the mabeti talking points in election speeches would be impressed by the country's politics. The importance of women voters and hence women-targeted welfare schemes is also widely recognised today. But the ridiculously small number of party tickets given to women indicates the deeper reality. Despite lip service to equal opportunity, the polity doesn't upturn unequal customs. The way in which UP has recently restricted private coaching centres from taking late-evening classes for women, is a telling example of sexist policy blinkers.

Yuva shakti gets a lemon | Just when the nation was supposed to be reaping a demographic dividend, many of its dominant-caste youth are on a perverse quest: to get reclassified as lower-caste.

Farmers chase a mirage | Communities that have enjoyed historical land and even political privileges are now confronted with stagnant farm incomes. Their leaders hold up caste-based reservations as the panacea and all politics goes along with this pretence.

Poor go unheard | The din over reservations drowns the truths of inequality within castes, and also the fact that economic growth is the best poverty-alleviation medicine.

Recall that in Lokniti's 2019 post-poll survey, 55% of the respondents self-identified as middle class. They likely see themselves as needing the state in the role of an enabler, not provider. And modern economic history is full of countries suffering the middle-income trap precisely when they cling too long to outworn policies. What will really deliver a collective upswing in Indians' fortunes is greater investment in health and education, and more non-farm jobs.

Date:05-12-23

Delhi Darlings No More

Regional parties, pushed to a corner by BJP, remain relevant but not so important

ET Editorials

Zoram People's Movement yesterday secured a majority in the Mizoram assembly in its very first attempt. In an election round dominated by two national parties – they will form governments in four states – ZPM reminded us that regional parties are not yet dead. But…

Fading clout | Regional parties may be relevant in some states, but their clout in Delhi is fading. Between 1989 and 2014, regional parties punched above their weight as none of the national parties got a majority. In 1990s, the Lok Sabha vote share of regional parties more than doubled from the earlier level of 20%. BJP's Lok Sabha majority in 2014 marked the end of that phase and pushed regional parties to the periphery. BJP emerged as the dominant force in states such as UP and Maharashtra too, leading to an upheaval within regional parties there.

Two kinds of cohabitation | Since 2014, there are two kinds of partnerships that have emerged between regional parties and national parties. Parties such as YSRCP in Andhra and BJD in Odisha dominate their states and have established an understanding with BJP. Typically, they extend support to BJP in Parliament. But in TN and Kerala, regional parties fight elections in alliance with national parties. In TN, regional parties call the shots in an alliance. In Bihar and Maharashtra, the scales are more evenly balanced. The key point here is that the national parties do lean on regional parties to be competitive in electoral contests.

Different kind of reality | So, regional parties will matter in 2024. However, it's unlikely India will see regional chieftains bargain and get hold of prized central ministries as they did earlier. It's not just BJP's dominance over the last decade that has changed the balance of power. Even in states where Congress has victories, Karnataka and Telangana, it's regional parties that lost ground. That's the new reality going into LS polls.

दैनिक भास्कर

Date:05-12-23

भाजपा की एकतरफा चुनावी जीत के मायने

शीला भट्ट

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान में भाजपा की एकतरफा जीत ने अहसास करा दिया है कि 2014 के बाद देश कितना बदल चुका है। तेलंगाना में कांग्रेस को जीत भी युवा और महिला मतदाताओं की बदौलत ही मिली है। वहीं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इन राज्यों के चुनावों के द्वारा देश को संदेश दे दिया है कि 2024 के लोकसभा चुनावों की तैयारी में वो कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।

अब भाजपा 2024 का चुनाव सिर्फ और सिर्फ मोदी के नाम पर लड़ेगी। भाजपा हर चुनाव में मोदी को रणभूमि में उतारती है और बाकी मुद्दों को फोकस से बाहर कर देती है। भाजपा के लिए चुनाव का मतलब मोदी हो गया है! वहीं भाजपा ने हिंदुत्व के मुद्दे को समाज में हर स्तर पर ऐसे प्रसार दे दिया है कि चुनावी प्लेटफॉर्म पर हर बार, हर वक्त उसे उठाने की जरूरत तक नहीं रही है। मोदी और सरकार के अथक प्रयासों के कारण राष्ट्रवाद और हिंदुत्व के मुद्दे पर भाजपा ने अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है।

राहुल गांधी की टीम के अथक प्रयास के बावजूद वो सफल नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि लोग उनके उठाए मुद्दों पर वोट डालने नहीं जाते हैं। इन नतीजों ने भाजपा की ताकत एनडीए में बढ़ा दी है और कांग्रेस की बार्गेनिंग पावर इंडिया गठबंधन में कम कर दी है।

हिंदीभाषी राज्यों में भाजपा-संगठन की ताकत और मोदी के करिश्मे के सामने कांग्रेस लड़ नहीं पा रही है। मोदी भाजपा के समर्थकों के साथ सतत नाता बनाकर रखते हैं। और अमित शाह उन्हें संगठन की ताकत से पोलिंग बूथ तक पहुंचा देते हैं। ये जुगलबंदी कांग्रेस पर तीन हिंदीभाषी राज्यों में भारी पड़ी है।

कांग्रेस के लिए राहत की बात यह है कि मुस्लिम मतदाता उसमें फिर से विश्वास करने को तैयार हुआ लग रहा है। लेकिन इसी कारण से यूपी और बिहार में प्रादेशिक पार्टियां कांग्रेस को अपना प्रतिद्वंद्वी मानेंगी, सीटों के बंटवारे में ज्यादा सख्त रुख अपनाएंगी। साथ ही, दक्षिण भारत की 125 लोकसभा सीटों पर कुछ कर दिखाने का भाजपा का रास्ता अब और कठिन हो गया है। ताजा नतीजों के बाद दक्षिण में भाजपा की स्थिति और कमजोर हो गई है। लेकिन हिंदुत्व-आधारित राजनीति में वो कोई बदलाव लाएगी, ऐसा लगता नहीं है।

महिलाओं, पिछड़े वर्ग और आदिवासियों ने मिलकर कुल 638 उम्मीदवारों में से भाजपा के 341 उम्मीदवारों को इस राउंड के राज्यों के चुनाव में जिता दिया है। नतीजों से हमें कई अहम सवालों के जवाब भी मिले हैं। अगर भाजपा की बात करें तो ये चुनाव मोदी का अभियान है, ऐसा पार्टी ने प्रचार के पहले ही स्थापित किया था।

छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और राजस्थान में पार्टी के अंदरूनी दबाव के बावजूद किसी को भी मुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार नहीं बनाया गया था। तीनों राज्यों के परिणाम देखकर कह सकते हैं कि मोदी की गारंटी मतदाताओं में विश्वास पैदा कर गई।

छत्तीसगढ़ के परिणाम तो सभी को चौंका गए। भाजपा के प्रभारी मनसुख मांडविया ने महतारी वंदना योजना के तहत 43,00,000 महिलाओं से फॉर्म भरवाए थे। युवाओं को 1,00,000 सरकारी नौकरियां देने का वादा किया गया था। किसानों को ₹3100 एमएसपी का भाव देने का वादा किया गया। और ये सब वादे मोदी की गारंटी के साथ घर-घर पहुंचाए गए, जिससे बाजी पलट गई।

मोदी ने जबर्दस्त साहस ये किया कि मध्यप्रदेश में शिवराज सिंह चौहान या प्रदेश प्रमुख की जगह दिल्ली से आकर विकास के काम करने की और कल्याणकारी योजनाओं के अमलीकरण की गारंटी दी और वोट मांगे। और लोगों ने वोट दिए भी।

कांग्रेस के लिए चिंता की बात ये है कि जहां-जहां भाजपा से उसका सीधा मुकाबला होता है, वहां मोदी का करिश्मा पार्टी को बढ़त दे देता है। इस बार के चुनावों में रेवड़ी पॉलिटिक्स ने भी बड़ी भूमिका अदा की है। ये मानना पड़ेगा कि भारतीय राजनीति में गरीबों को दी जाने वाली मुफ्त सरकारी सुविधाएं वोट दिलाती हैं। लेकिन लोग उन्हें कल्याणकारी योजना ज्यादा मानते हैं, मुफ्त की रेवड़ी नहीं।

तेलंगाना में केसीआर ने कुछ कम कल्याणकारी काम नहीं किए थे, लेकिन कांग्रेस भी आकर्षक योजना के वादे करके मत बटोरने में कामयाब रही। चुनाव के अवसर पर गरीबों के लिए कल्याणकारी काम का वादा करना वोट मांगने वालों का फर्ज है, ये बात नेताओं को मतदाताओं ने समझा दी है।

एक बड़ा फर्क नजर आया है कि इन चुनावों ने भारतीय राजनीति में महिलाओं के मतों का मूल्य बढ़ा दिया है। अब उनको कोई नजरंदाज नहीं कर पाएगा। लाड़ली बहना योजना ने शिवराज की डूबती नैया जिस तरह बचाई है, उसे भाजपा कभी भूल न पाएगी।

मध्यप्रदेश में महिलाओं का मतदान भी 2% ज्यादा हुआ। इस चुनाव में देखा गया कि महिलाओं का मुद्दा मजबूत होने के कारण कांग्रेस के प्रचार में भी राहुल से ज्यादा प्रियंका का बोलबाला रहा। प्रियंका आम आदमी के मुद्दे उठाने में राहुल से ज्यादा सफल रही हैं।

कांग्रेस के लिए अफसोस की बात ये है कि जिन-जिन मुद्दों को राहुल ने बढ़-चढ़कर उठाया, उनमें से किसी को मतदाताओं ने अपना नहीं समझा। जैसे कि जातिगणना का मुद्दा। छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और राजस्थान में कहीं भी ये ना गर्म बना, ना वोट दिला पाया। यही हाल अदाणी के खिलाफ चली मुहिम का हुआ। आम आदमी इन मुद्दों को समझता है। गंभीर भी मानता है। लेकिन वोट करते समय वो खुद के और अपने परिजनों के भविष्य को नजर में रखता है।

दैनिक जागरण

Date:05-12-23

नाकाम होती विभाजनकारी राजनीति

हरेंद्र प्रताप, (लेखक बिहार विधान परिषद के पूर्व सदस्य हैं।)

बाह्य आक्रमण और अतिरिक शिथिलता के कारण अर्थिक समाजिक, शैक्षणिक 'आदि विकृतियों को ढाल बनाकर इस देश में साम्यवादी और समाजवादी राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर समय के साथ अपना विस्तार करते गए। वामपंथी नेता वर्ग संघर्ष तो समाजवादी वर्ग/ जाति संघर्ष का नारा देकर राष्ट्रीय एकता, एकात्मता और सुरक्षा की न केवल उपेक्षा करते रहे, बल्कि इसके पक्षधर लोगों समूहों का उपहास भी करते रहे चुनावी फायदे के लिए इन्होंने आतंकवाद/ अलगाववाद पर चुप्पी साधकर तुष्टीकरण को खाद-पानी देने का काम किया। आजाद भारत के प्रथम संसदीय चुनाव के समय देश में लोकसभा की कुल 489 सेटें थीं तब लोकसभा के लिए हुए चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी चार राज्यों से 16 सीटें जीत कर नंबर दो तथा सोशलिस्ट पार्टी आठ राज्यों से 12 सीटें जीत कर तीसरे नंबर पर रही थी। वर्तमान की भाजपा उस समय भारतीय जनसंघ के रूप में दो राज्यों से मात्र तीन सीटें ही जीत सकी थी। वर्ष 1957 के संसदीय चुनाव में लोकसभा में सीटों की संख्या 494 हो गई। उस चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी नै राज्यों से 27 सीटें जीत कर नंबर दो तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी आठ राज्यों से 19 सीटें जीत कर नंबर तीन की अपनी स्थिति बनाए रखी। भारतीय जनसंघ उस चुनाव में दो राज्यों में चार सीटें ही जीत पाई थी। वर्ष 1962 में आम चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी सात राज्यों से 29 सीटें, प्रजा सेशलिस्ट पार्टी सात राज्यों से 12 सीटें तथा सोशलिस्ट पार्टी छह राज्यों से छह सीटें तथा भारतीय जनसंघ चार राज्यों से 14 सीटें जीती थीं।

समाज में विभाजन और संघर्ष की राजनीति करने वाले सोशलिस्ट तो पहले ही विभाजित हो गए थे। वर्ष 1964 में कम्युनिस्ट भी विभाजित होकर सीपीआई एवं सीपीएम के नाम पर अलग-अलग चुनाव लड़े। इसके बाद 1967 में लोकसभा की कुल 520 सीटों पर हुए संसदीय चुनाव में भारतीय जनसंघ को आठ राज्यों से 35 सीटें, सीपीआई को आठ राज्यों से 23 सीटें, सीपीएम को चार राज्यों से 19 सीटें, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को छह राज्यों से 23 सीटें तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को सात राज्यों से 13 सीटें प्राप्त हुई थीं उस चुनाव में स्वतंत्र पार्टी के बाद तीसरे नंबर की पार्टी भारतीय जनसंघ हाशिये पर जाती जाति परिवार की राजनीति बनी 1962 में कम्युनिस्ट चीन के भारत पर आक्रमण और भारतीय जनसंघ की उभरती ताकत को समझते हुए राममनोहर लोहिया और पंडित दीनदयाल उपाध्याय न केवल साथ आए बल्कि गैर कांग्रेसवाद के नाम पर अनेक राज्यों में कांग्रेस को सत्ता से हटाने में सफल भी हुए कई राज्यों में कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट और भारतीय जनसंघ की मिलजुली सरकारें भी बनीं, पर यह प्रयोग सफल नहीं हो पाया देशव्यापी किसी गैर कांग्रेसी दल के अभाव में कांग्रेस निरंकुश और भ्रष्ट हो गई। वर्ष 1974 के बिहार आंदोलन और जेपी के नेतृत्व में चले अविलन से 1977 में केंद्र की सरकार में गैर कांग्रेसी सरकार का प्रयोग भी विफल हो गया। समय के साथ समाजवादी विचारधारा की राजनीति करने वाले जाति और परिवार की राजनीति में कैद हो गए। वे उससे बाहर नहीं निकल पा रहे।

वर्तमान में देश में राष्ट्रीय स्तर पर अब मान्यता प्राप्त कोई भी समाजवादी दल नहीं है। 2019 के संसदीय चुनाव में वामपंथी सीपीआई केवल तमिलनाडु से ही वे सेटें जीत पाई तथा सीपीएम को भी तीन में से ये सीटें तमिलनाडु और एक सेट केरल से मिलीं। वहीं अयोध्या अदिलन, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता जैसे मुद्दे को सामने रखकर पहले जनसंध और अब भाजपा की कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों ने कमंडल पार्टी कह कर अलग-थलग करने का प्रयास किया, पर इसमें वे असफल रहे। वर्ष 1990 में अयोध्या अविलन से हुए राष्ट्र के 'स्व' जागरण का रथ आगे बढ़ा तो विश्वनाथ प्रताप सिंह और मंडल आयोग के आरक्षण से लगा कि देश का हिंदू समाज अब खंड-खंड हो जाएगा मंडलवादी राजनीति का नाम देकर मंडल बनाम कमंडल' का मुहावरा भी प्रचलित हो गया। देश में कांग्रेस के विकल्प के रूप में 2014 में भाजपा स्पष्ट बहुमत लेकर केंद्र में सरू हुई राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक मोर्चे पर वैश्विक स्तर पर देश की सख बढ़ने लगी। 2019 के संसदीय चुनाव में भी भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला। कोहि 19 जैसी महामारी से मुकाबला के दौरान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश के 'स्व' का प्रकटीकरण होने लगा। आज भारत एक महाशक्ति बनकर उभर रहा है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते थे कि 'दुख और कष्टों से परिपूर्ण विश्व में असमानता, अन्याय, उत्पीड़न दासत्व, शोषण क्षुधा और अभाव को देखकर कोई भी व्यक्ति जिसे मानवीय अंत करण प्राप्त है, समाजवादी वृत्ति अपनाए बिना नहीं रह सकता। समाजवाद प्रवृत्ति आवश्यक है, पर समाजवादी राज्य व्यवस्था सत्ता और वित का केंद्रीयकरण करता है। यह वर्ग संघर्षवादी भौतिक एवं अमानवीय दर्शन है। यह भारतीयता के प्रतिकूल विदेशी विचार है। लोकतंत्र में पक्ष के साथ एक सशक्त विपक्ष की भी कामना की गई है। देश में कांग्रेस को छोड़ दें तो किसी अन्य दल का आधार दो-तीन राज्यों से ज्यादा नहीं है। आज कांग्रेस के साथ वामपंथी और कथित समाजवादी विचार वाले दलों की विश्वसनीयता पर संकट है। इसकी भरपाई के लिए जमीन पर काम करने के बजाय वे जाति और आरक्षण से जुड़े पुराने मुद्दों को पुनः आगे लाकर सफल होने का सपना देख रहे हैं। इस विभाजनकारी राजनीति पर देश की प्रबुद्ध जनता का निर्णय देश का भविष्य तय करेगा। वैसे इसकी एक झलक पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव के नतीजों में मिल गई, जिसमें समाज को बांटने बालों की करारी हार हुई है।

जनसत्ता

Date:05-12-23

सरोकार के समांतर

संपादकीय

जलवायु संकट का समाधान निकालने के लिए वैश्विक स्तर पर जो भी प्रयास हो रहे हैं, उनमें भारत ने बढ़-चढ़ कर अपनी भूमिका निभाई है। मगर इस क्रम में कई बार बिगड़ते जलवायु का हवाला देकर ऐसे कायदे समान रूप से सभी देशों के लिए जरूरी बनाने की कोशिश की जाती है, जिन्हें प्रथम दृष्टया तो कारगर कहा जा सकता है, मगर दूसरे स्तर पर वे कुछ देशों के लिए मुश्किल या फिर नुकसानदेह भी साबित हो सकते हैं। दुबई में सीओपी28 के जारी सम्मेलन में जलवायु संकट के सवाल पर जो चिंताएं जाहिर की गईं, समस्या के हल के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किए गए, भारत ने

अपनी सीमा में उन सबसे सहमति जताई है।साथ ही, कार्बन उत्सर्जन को कम करने के क्षेत्र में भारत ने जितनी गंभीरता से काम किया है, उसका भी उल्लेख किया गया। भारत को इस बात की भी चिंता करनी है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो नियम-कायदे तय किए जाते हैं, उन पर अन्य देश भले सहमत हों, लेकिन कोई खास नियम या बिंदु यहां के संदर्भ में कितने उपयुक्त हैं या फिर कहीं उससे देश के सामने कोई नई समस्या तो नहीं खड़ी हो जाएगी ।

यही वजह है कि भारत ने जलवायु और स्वास्थ्य को लेकर तैयार किए गए सीओपी28 घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने से परहेज किया। खबर के मुताबिक, घोषणापत्र के दस्तावेज में स्वास्थ्य देखभाल के बुनियादी ढांचे के भीतर शीतलन या 'कूलिंग उपकरणों' के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उपयोग पर अंकुश लगाने की शर्त थी। दरअसल, कम समय में देश के मौजूदा स्वास्थ्य सेवा बुनियादी ढांचे के मद्देनजर ग्रीनहाउस गैसों के उपयोग को सीमित करने का लक्ष्य हासिल करना भारत के लिहाज से व्यावहारिक नहीं था। घोषणापत्र में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में गहन, तीव्र और निरंतर कटौती से स्वास्थ्य के लिए लाभ प्राप्त करने के मकसद से जलवायु कार्रवाई का आह्वान किया गया है। इसमें उचित बदलाव, कम वायु प्रदूषण, सक्रिय गतिशीलता और स्वस्थ पोषण शामिल है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि बीते कई दशकों में जलवायु संकट पर जताई जाने वाली चिंता के समांतर तमाम अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में हल के उपायों पर जोर देने के बावजूद यह समस्या लगातार गहराती गई है। इन हालात के लिए ग्रीनहाउस गैसों या कार्बन उत्सर्जन जैसे कारणों और उसमें विकसित देशों की भूमिका बिल्कुल स्पष्ट रही है।

जहां तक भारत का सवाल है, कार्बन उत्सर्जन के मामले में इसने अपेक्षा से ज्यादा तेज रफ्तार से सुधार किया और समय से पहले ही इसमें काफी कमी लाने में कामयाब रहा। दूसरी ओर यह भी हकीकत है कि भारत जैसे कई देशों में अब भी स्वास्थ्य और कुछ अन्य क्षेत्रों में शीतलन की प्रक्रिया एक अनिवार्यता है और इसीलिए घोषणापत्र के इस बिंदु का पूरी तरह अनुपालन करना भारत के लिए मुश्किल है। यों भी, भारत में फिलहाल स्वास्थ्य मामले में बुनियादी सेवाओं की जो तस्वीर है, उसमें अगर शीतलन के लिए ग्रीनहाउस गैस में एक सीमा से ज्यादा कटौती की जाती है, तो उससे चिकित्सा सेवा के क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने में बाधा आ सकती है। भारत में आज भी दूरदराज के कई इलाकों में पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं नहीं हैं। वहां तक आपात सेवाएं या फिर जीवनरक्षक दवाओं की सुरक्षित पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शीतलन एक अनिवार्य पहलू है। इसलिए जलवायु संकट के मसले पर अपने ईमानदार सरोकार के समांतर कुछ बिंदुओं पर भारत की चिंता को समझा जा सकता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:05-12-23

भारत का प्रस्ताव

संपादकीय

भारत ने 2028 में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (सीओपी- 33) की मेजबानी का प्रस्ताव दुनिया के सामने रखा है। साथ ही, बंजर भूमि पर वृक्षारोपण के माध्यम से 'ग्रीन क्रेडिट' हासिल करने पर केंद्रित पहल भी की। ग्रीन क्रेडिट कार्बन क्रेडिट की वाणिज्यिक मानसिकता से आगे बढ़कर जनभागीदारी से 'कार्बन सिंक' बनाने का अभियान है। संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) में संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने यह प्रस्ताव रखते हुए कहा कि विश्व कल्याण के लिए सबके हितों की सुरक्षा और सबकी भागीदारी आवश्यक है। यदि भारत का यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया जाता है, तो यह आयोजन उस साल की शुरुआत में जी-20 शिखर सम्मेलन के बाद देश का अगला बड़ा वैश्विक सम्मेलन होगा। बेशक, जिस तरह से भारत जलवायु परिवर्तन संबंधी तमाम आयोजनों और पहल से आगे बढ़कर खुद को जोड़ता है, उससे जलवायु परिवर्तन को लेकर उसकी चिंता का पता चलता है। गौरतलब है कि दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी भारत में होने के बावजूद वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में भारत का हिस्सा 4 प्रतिशत से भी कम है, लेकिन वह जलवायु परिवर्तन को लेकर विश्व की चिंता से स्वयं को जोड़े हुए है। और इस क्रम में उसने 2030 तक अपने यहां लक्ष्य रखा है कि उत्सर्जन तीव्रता को 45प्रतिशत तक घटाएगा। साथ ही, गैर-जीवाश्म ईंधन के हिस्से को 50 प्रतिशत करेगा। भारत की यह चिंता ही है कि जब-तब वह विकसित देशों पर, भले ही परोक्ष रूप से, निशाना भी साधता रहा है, जिन्होंने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया और अपने हिस्से की जिम्मेदारी से पीछे हटते रहे हैं। विकसित देश अभी भी नहीं चेते हैं, और पिछली सदी में जलवायु परिवर्तन में बदलाव के कारकों को दुरुस्त करने का समय अब ज्यादा नहीं बच रहा है। जरूरी है कि साउथ ग्लोबल के देश या जिन्हें तीसरी दुनिया के देश कहा जाता है, विकसित देशों की इस अनदेखी के मद्देनजर एकजुट हो जाएं। उन्हें विवश करें कि अपने स्वार्थों को छोड़कर वे दूसरे देशों को तकनीक हस्तांतरण करें और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला को मजबूत बनाएं। इसके लिए बड़े देशों को 'मेरा भला तो सब भला' की सोच से उभरना होगा। भारत ने मजबूती से कहा है कि एकजुटता से ही मानवता पर खतरा बनी इस समस्या से पार पा सकेंगे।'

Live हिन्दुस्तान .com

Date:05-12-23

महिलाओं और नौनिहालों की कैसे बढ़ाई जाए सुरक्षा

रंजना कुमारी, (सेंटर फॉर सोशल रिसर्च)

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के नए आंकड़े महिला और बाल अपराध की स्याह तस्वीर दिखाते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, साल 2022 में महिलाओं के खिलाफ विभिन्न अपराधों से जुड़े कुल 4, 45,256 मामले दर्ज किए गए, जो साल 2021 और 2020 में क्रमशः 4,28,278 और 3,71,503 थे। इनमें से भी अधिकांश मामले पति या परिजनों द्वारा की गई क्रूरता (31.4 फीसदी) के हैं, जिसके बाद अपहरण (19.2 प्रतिशत) के मामले दर्ज किए गए। बलात्कार के प्रयास से जुड़े 18.7 फीसदी और बलात्कार के 7.1

प्रतिशत मामले पिछले साल सामने आए हैं। प्रति एक लाख महिला जनसंख्या पर अपराध की जो दर वर्ष 2021 में 64.5 प्रतिशत थी, वह 2022 में बढ़कर 66.4 हो गई है। इसी तरह, बच्चों के खिलाफ अपराध में भी 2021 की तुलना में करीब आठ फीसदी की बढ़ोतरी दर्ज की गई है, जिनमें से अधिकांश मामले अपहरण (45.7 प्रतिशत) और पॉक्सो एक्ट (39.7 प्रतिशत) के हैं।

इन आंकड़ों से बहुत हैरानी नहीं होती। पूरे वर्ष जिस तरह से मीडिया में खबरें आती रहीं, उससे यह अंदाजा था ही कि महिलाओं व बच्चों के खिलाफ अपराध बढ़ रहे हैं। हालांकि, इस वृद्धि की एक वजह कोविड- प्रतिबंधों की विदाई भी है। साल 2021 तक कोरोना महामारी के कारण कई तरह के प्रतिबंध आयद थे और लोग सीमित संख्या में घरों से बाहर निकल रहे थे। ऐसे में, महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध भी दबे रह गए थे, लेकिन 2022 में जैसे ही पूरा तंत्र व्यवस्थित हुआ, दर्ज मामलों की संख्या में उछाल आ गया।

आखिर इन पर कैसे लगाम लगे? सबसे पहले, लंबित मुकदमों का जल्द निपटारा होना चाहिए। कानून होने के बावजूद महिला या बच्चों से जुड़े अपराध इसलिए कम नहीं हो रहे, क्योंकि लोगों को न्याय मिलने में देर हो जाती है। इससे कानून बेअसर साबित होने लगता है। ऐसा नहीं है कि अभी महिलाओं से जुड़े जो कानून हैं, उनमें सुधार की गुंजाइश नहीं है, लेकिन उनके उचित क्रियान्वयन के अभाव में वे पूरी तरह से प्रभावी नहीं हो पा रहे हैं। इसी तरह, महिला सुरक्षा को सामाजिक-राजनीतिक मुद्दा बनाने की भी जरूरत है। अभी जितना ध्यान अन्य मसलों पर दिया जाता है, या महिलाओं को लेकर ही जितनी योजनाएं बनाई जाती हैं, उतनी अगर उनकी सुरक्षा पर भी बात होती, तो तस्वीर कुछ अलग होती। महिलाओं की हत्या, मारपीट, घरेलू अपराध आदि पर राजनीतिक सवाल उठने चाहिए, लेकिन इसकी कम ही चर्चा होती है।

जन-जागरूकता बढ़ाने की दिशा में भी गंभीरता से काम होना चाहिए। महिलाओं से जुड़ी जानकारी का दायरा बढ़ाना होगा, खासकर लड़कों व पुरुषों को यह पता होना चाहिए कि औरतों से जुड़े कौन से मसले अपराध के दायरे में आते हैं। सूचना जनसंपर्क जैसे विभागों को महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा को रोकने के उपाय गांव-गांव में प्रसारित करने चाहिए। सच यही है कि आज जितने मामले दर्ज हो रहे हैं, उनमें बमुश्किल 10 फीसदी हिस्सेदारी ग्रामीण भारत की है, शेष 90 फीसदी मामले महानगरों या बड़े शहरों में दर्ज हो रहे हैं। जाहिर है, पुलिस-प्रशासन को कहीं अधिक संवेदनशील बनाना होगा, विशेषकर छोटे कस्बों और गांवों में महिला अथवा बाल अपराध के मामले बिना किसी रुकावट के दर्ज हो सकें, इसकी व्यवस्था हमें करनी होगी।

जरूरी यह भी है कि महिलाओं अथवा बच्चों को लेकर काम कर रही संस्थाओं को जरूरी संसाधन उपलब्ध कराए जाएं। संसाधनों के अभाव में ऐसी संस्थाओं की संख्या अब घटने लगी है। इसके लिए सामाजिक क्षेत्र में निवेश बढ़ाने की दरकार है। इसे महज कॉरपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी (सीपीआर) के रहमोकरम पर छोड़ना गलत होगा। आज समाज कल्याण बोर्ड, महिला आयोग जैसी तमाम संस्थाओं के बजट बढ़ाने के प्रयास होने चाहिए। दिक्कत यह भी है कि सरकारों को जितनी पहल करनी चाहिए, उतनी वे नहीं कर रही हैं। अगर वे आगे नहीं आएंगी, तो सुधार के प्रयास परवान नहीं चढ़ सकेंगे। महिला व बाल विकास जैसे मंत्रालयों को अहम भूमिका निभानी होगी। महिला व बाल अपराधों की दर निस्संदेह कम हो सकती है, पर इसके लिए जरूरी है कि सार्वजनिक व निजी क्षेत्र समग्रता में काम करें। क्या ऐसा होगा ?